Indian J. Soc. & Pol. 06(01):81-82:2019 **ISSN: 2348-0084(P)**
ISSN: 2455-2127(O)

बंगाल के पाल राजवंश में कला एवं स्थापत्य

रमेश कुमार[1]
[1]एसोसिएट प्रोफेसर (प्राचीन इतिहास), श्री महन्थ रामाश्रय दास पी0जी0 कालेज, भुड़कुड़ा, गाजीपुर, उ0प्र0,भारत

ABSTRACT

आठवीं शताब्दी ईस्वी के मध्य भाग में बंगाल राज्य में अराजकता की स्थिति को समाप्त कर सु–शासन स्थापित करने वाले पाल वंश के राजाओं का शाासन–काल न केवल राजनैतिक दृष्टि से बल्कि कला एवं स्थापत्य की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। राजनैतिक अस्थिरताओं के वातावरण के बावजूद भी उसके द्वारा निर्मित करवाये गये मन्दिर भवन एवं अन्य स्मारक इस बात के साक्षी हैं कि उनके समय में बिहार एवं बंगाल में स्थापत्य कला को पुनर्जीवन प्राप्त हुआ। पाल शासकों के समय में उस धर्म को प्रश्रय मिला जो प्रायः समस्त भारत में सिमटता हुआ देश के केवल पूर्वी अंचल में नवस्फूर्ति प्राप्त करता रहा। पाल शासक बौद्ध धर्म के प्रबल समर्थक व प्रचारक थे किन्तु उन्होंने ब्राह्मण धर्म का विरोध नहीं किया। ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित देवी देवताओं की मूर्तियों एवं मन्दिरों का निर्माण उनके काल में होता रहा। साहित्यिक एवं पुरातात्विक दोनों स्रोतों से पाल शासकों के काल में कला एवं स्थापत्य के विकास की जानकारी प्राप्त होती है।

KEYWORDS: *पाल वंश, प्राचीन भारतीय कला, वास्तुकला, स्थापत्यकला*

पाल वंशीनरेश महान निर्माता थे। नालन्दा विक्रमशीला ओदन्तपुरी, सोमपुरी आदि में उनके द्वारा बौद्ध बिहार एवं भवन बनवाये गये। पाल वंश का संस्थापक गोपाल कला अभिरूचि सम्पन्न शासक था। आर्यमंजुश्री मूल कल्प में उसे विहारों, चैत्यों उद्यानों तथा जलाशयों को बनवाने का श्रेय दिया गया है।(जायसवाल, 2013 पृ0514) तारानाथ यह बताता है कि उसने ओदंतपुर के निकट नलेन्द्र विहार (मन्दिर) का निर्माण करवाया। ओदन्तपुर नगर का निर्माणकर्त्ता स्वयं गोपाल था। उसने यहाँ एक विहार की स्थापना की। तिब्बती परम्पराओं के अनुसार यह विहार चमत्कारिक ढंग से सुखयी गयी झील के ऊपर निर्मित था।(बू–स्टोन, पृ0157) वस्तुतः पाल कालीन कला एवं स्थापत्य का चरमोत्कर्ष महाराजाधिराज धर्मपाल (770–810 ई0) और उसके सुयोग्य उत्तराधिकारी देवपाल (810–850 ई0) के शासन काल में प्राप्त होता है। उक्त दोनों सम्राट कला एवं स्थापत्य के महान संरक्षक थे और कला एवं स्थापत्य के अनेक आदर्श स्थापित किये।

धर्मपाल ने स्वयं अपने शासन काल के दौरान अनेक निर्माण–कार्य संपन्न करवाये। तारानाथ के अनुसार बौद्ध धर्म के उत्थान के लिए 35 केन्द्रों की स्थापना की। इसी ने विक्रमशिला महाविहार की स्थापना की थी।(लामा और चट्टोपाध्याय,1980,पृ0274) यह महाविहार मगध के उत्तर में गंगा के तट पर एक छोटी पहाड़ी पर बना था। नालन्दा को जो प्रसिद्धि एवं सम्मान गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल में मिला कदाचित् वैसा ही सम्मान विक्रमशिला को प्राप्त हुआ। सम्पूर्ण महाविहार में 107 मन्दिर तथा 6 विद्यालय थे। मुख्य मन्दिर के चारों ओर 53 कक्ष थे जो तांत्रिक गुह्य कृत्यों के लिए थे तथा भिक्षुओं के सामान्य प्रयोग हेतु 54 आवास कक्ष थे, ये सभी प्रकार से घिरे हुए थे। इस प्रकार में छः द्वार थे।(मजूमदार एण्ड पुसाल्कर,1964,पृ0271)

पालयुगीन भवन एवं स्मारकों के अवशेष पहाड़पुर (राजशाही–बांग्लादेश) की खुदाई से प्राप्त होते हैं। यहाँ से एक विशाल मन्दिर का अवशेष मिलता है जो उत्तर–दक्षिण में 356 फुट तथा पूरब–पश्चिम में 314 फुट लम्बा है। इसी स्थान पर धर्मपाल द्वारा निर्मित सोमपुर बिहार स्थित था। इस मन्दिर में कई चबूतरे हैं। भवन के चारों ओर चौड़े मुंडेरे से घिरा हुआ प्रदक्षिणा पथ है। प्रथम दो चबूतरों पर चढ़ने के लिए सीढ़िया बनायी गयी हैं। मध्य भाग में वर्गाकार मिट्टी का थूआ था जो चबूतरों से ऊपर उठा हुआ है। दीवारें सूखी ईंटों की बनी है जिसे गारे से जोड़ा गया है। ईंट–गारे के मन्दिर आज भी भूतल से 70 फुट की ऊँचाई पर विद्यमान हैं।(श्रीवास्तव, 2013) उक्त विहार के अन्तर्गत निर्मित मन्दिर की कला अपने आप में निपुणता को प्रदर्शित करती है जिनका प्रभाव दक्षिण–पूर्व एशिया एवं वर्मा के मन्दिरों पर भी पड़ा। मन्दिर का अलंकरण अद्वितीय का परिचायक है।

इस दृष्टि से वर्मा के आनन्दमन्दिर,कम्बोडिया के अंकोरवाट तथा वोरोबुदूर के मन्दिर स्तूप को उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है। पूर्वी भारत और दक्षिण पूर्वी–द्वीप समूहों के मध्य सम्बन्ध पाल काल में अधिक घनिष्ठ हुए। संभवतः स्थापत्य शैली इन सम्बन्धों के फलस्वरूप अधिक प्रभावित हुई।

देवपाल के शासनकाल का एक अभिलेख स्थापत्य से सम्बन्धित नालन्दा से मिला है। इस अभिलेख में नालन्दा में एक

1: Corresponding Author

विहार निर्मित करवाये जाने का उल्लेख हुआ है। वह विहार दक्षिण–पूर्वी एशिया के श्री विजय राज्य के शासक श्रीबाल पुत्रदेव ने निर्मित करवाया था। यह अभिलेख नालन्दा के विहार संख्या 1 के उत्खनन से मिला है। उत्खनन से इस विहार के नौ स्तर मिले हैं। श्री बालपुत्रदेव द्वारा निर्मित विहार इसी स्थल पर रहा हो। इस शासक के आग्रह पर पाल शासक देवपाल ने श्रीनगर भुक्ति के अर्न्तगत राजगृह विषय से सम्बन्धित अजपुर नय में नंदिवनाक और मजिवाटकः पिलिपिण्का नय में नटिकाः अचलानय में हस्तिग्राम और गया विषय के अर्न्तगत कुमुदसूव वीथी में पालामक गाँवों को दान में दिया था जिससे इस बिहार में रह रहे भिक्षुकों का पालन–पोषण भली–प्रकार हो सके। स्पष्ट है कि ये शासक विहारों, मंदिरों आदि के निर्माण में जितनी रूचि रखते थे, उतनी ही रूचि उनके विकास एवं पल्लवन में दिखलाते थे। नारायणपाल के भागलपुर अभिलेख में उसके द्वारा कलशपोत में भगवान शिव भट्टारक के सहस्रायन मन्दिर के निर्माण का उल्लेख मिलता है (मित्रा,पृ0404) नारायणपाल ने भगवान शिव भट्टारक के निमित्त तथा पाशुपत संम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा मन्दिर में (बलि) 'चरू' संपादित करने के निमित्त एवं पाशुपत संन्यासियों की शयनासन, औषधि आदि की व्यवस्था के निमित्त तीरभुक्ति के अर्न्तगत कक्ष विषय में मकुतिका ग्राम दान में दिया था। नारायणपाल के ही बादल स्तम्भ लेख में यह उल्लेख है कि ब्राह्मणमंत्री गुरूवमिश्र ने नारायणपाल के काल में यह गरूण स्तम्भ स्थापित किया जो कलात्मक दृष्टि से अपनी निपुणता एवं सजीवता को प्रदर्शित करता है।(मैत्रेय,1964,पृ070) यह स्तम्भ नारायणपाल की कला के प्रति अभिरूचि को प्रदर्शित करता है।

महिपाल के शासनकाल में स्थापत्य संबंधी नवनिर्माण एवं पुनरूद्धार के अनेक कार्य हुए। इस शासक के समय में सारनाथ पाल साम्राज्य में शामिल था। महमूद गजनवी के आक्रमण के समय सारनाथ के स्मारकों को बहुत क्षति पहुँची। इन स्मारकों के पुनरूद्धार एवं नवनिर्माण के लिए महिपाल ने स्थिरपाल तथा बसंतपाल नामक दो भाईयों को नियुक्त किया था। इसका प्रमाण 1026 ई0 के सारनाथ अभिलेख से मिलता है। इन दोनों ने सारनाथ में धर्मराजिका एवं धर्मचक्र नामक दो स्तूपों का पुनरूद्धार कराया तथा अष्टमहास्थान शैल गंधकुटी नामक प्रस्तर का मन्दिर बनवाया। नालन्दा से प्राप्त अभिलेख से ज्ञात होता है कि महिपाल के शासककाल में नालन्दा का एक मन्दिर अग्नि द्वारा नष्ट कर दिया गया था, किन्तु कौशाम्बी निवासी बालादित्य द्वारा इसका जीर्णोद्धार करवाया गया।(मैत्रेय,1964) पाल शासकों द्वारा निर्मित मन्दिरों के बाह्य दीवारों में जुड़ी हुई मृण्मूर्तियां लोक–जीवन एवं अभिरूचि के विविध पक्षों पर सुन्दर प्रकाश डालती हैं।

इस प्रकार पाल वास्तुकला इतिहास में सर्वथा नया प्रतिमान स्थापित करती है। तक्षणकला के क्षेत्र में भी पालकालीन कलाकारों ने एक सर्वथा नवीन शैली का सूत्रपात किया जिसे 'मगधवंश शैली' कहा जाता है। तारानाथ इसे 'पूर्वीभारतीय शैली' की संज्ञा देते हैं। इसका प्रवर्तक धीमान एवं विपत्तपाल को मानते हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसमें चिकने काले रंग के कसौटी वाले पाषाण तथा धातुओं की सहायता से मूर्तियों का निर्माण किया गया है। बौद्ध जैन, एवं ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित अनेक देवी–देवताओं की मूर्तियां बनायी गयीं। ये बिहार तथा बंगाल के विभिन्न क्षेत्रों से मिलती हैं। पाल मूर्तियों में मौलिकता का अभाव है। मूर्तियों को आभूषणों से लाद दिया गया है जिसमें कृत्रिमता का स्पष्ट आभास मिलता है। इस प्रकार साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि पालकाल में स्थापत्य कला का पर्याप्त पल्लवन हुआ। पाल शासकों के अतिरिक्त स्फूर्तिवान व कर्मठ वफादार अन्य विशिष्ट व्यक्तियों का भी इसमें योगदान था। पाल शासक न केवल महान निर्माता थे वरन उन स्मारकों के संरक्षण में भी पर्याप्त रूचि रखते थे जो पूर्ववर्ती शासकों द्वारा निर्मित किये गये थे। पाल शासक मुख्यतः बौद्व धर्मानुयायी थे। कला एवं स्थापत्य के सन्दर्भ में पाल कालीन लेखों से उनके दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ सांस्कृतिक सम्बन्धों की प्रबल पुष्टि होती है। वस्तुतः अलंकरण की अधिकता तथा अंग–प्रत्यंग का चपल आभंग इस शैली की विशेषता बन गयी। देव मूर्तियों में मानवीय सौन्दर्य को आकर्षक ढंग से उभारने का प्रयत्न किया गया है। तंत्रयान के प्रभाव से पुरूष–मूर्तियाँ में नारी सौन्दर्य तथा शक्ति का समावेश दिखाई देता है। कुछ मूर्तियों को देखने से धार्मिक असहिष्णुता एवं कट्टरता का आभास मिलता है। इस दृष्टि से पालकला में समन्वयवादिता का अभाव परिलक्षित होता है।

सन्दर्भ

श्रीवास्तव, के0सी0,(2013) *प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति,* इलाहाबाद

जायसवाल, के0पी0,(1934) *इम्पिरियल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया,* लाहौर

बु–स्तोन, *हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म,* ओवर मिलर द्वारा अनुदित द्वितीय भाग, पृ0–157

लामा–चिम्पा एवं अलका चट्टोपाध्याय, तारानाथाज (1980) *हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन इण्डिया,* कलकत्ता,

मजुमदार, आर0सी0 एवं ए0डी0 पुसाल्कर (सम्पा0),(1964) *द एज ऑफ इम्पिरियल* कन्नौज,

मित्रा, आर0एल0, *जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल,* पृ0–404

मैत्रेय, ए0के0 (1964), *जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल,* कलकत्ता,

इण्डियन एन्टिक्वेरी, 1960, पृ0–139, 14।